प्रवचन नं. ८० गाथा-१७-१८, कलश-२० दिनाङ्क ०८-०९-१९७८ शुक्रवार
भाद्र शुक्ल ६, वीर निर्वाण संवत् २५०४

मार्दव धर्म।

उत्तमणाणपहाणो उत्तमतवयरणकरणसीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स॥ ३९५॥

आहाहा! यह दश प्रकार का धर्म, चारित्रधर्म का अन्तर्भेद है। चारित्र, वह मोक्ष का साक्षात् कारण है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान, जिसको चारित्र का कारण है और चारित्र, मोक्ष का कारण है, उस चारित्र में यह दश भेद हैं, उसमें उत्तम मार्दव — कोमलता... कोमलता... कोमलता... उत्तम ज्ञान हो, जानने का पण्डित हो और ज्ञान, तपस्या में महा प्रधान, तपस्या करता हो, छह-छह महीने के अपवास आदि, तथापि **अप्पाणं जो हीलदि...** इस आत्मा का अनादर करता है। आहाहा! अरे..! तेरी पर्याय कहाँ और सर्वज्ञ की पर्याय कहाँ? आहाहा! समझ में आया? मुनि है, तीन कषाय का अभाव है, चारित्र है, इतनी निर्मानता प्रगट हुई है कि जिसमें केवलज्ञान की पर्याय देखने से मैं तो तृणतुल्य हूँ। आहाहा! यहाँ तो थोड़ा बहुत ज्ञान हो, वहाँ मान ले कि हमने बहुत कर लिया और जाना... आहाहा! अरे..रे...! यहाँ तो उत्तम ज्ञान हो, शास्त्र का, महा शास्त्रों का जाननेवाला पण्डित हो, ज्ञानमद नहीं करता। आहाहा! तथा पुत्र-कलत्र आदि में, समकिती हो वह भी उसमें मेरा है — ऐसा अभिमान नहीं करता। आहाहा! सम्यग्दृष्टि है, (उसे) पुत्र-कलत्र आदि लक्ष्मी अरबोंपति आदि (हो), उसमें आसक्ति होती है परन्तु वह मोह का विलास है, मेरी चीज नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा में निर्मानपना रखते हैं। यह फिर यह तो तीसरा है न, (तीसरा) उत्तम आर्जव।

अब, उत्तम आर्जव!

जो चिंतेइ ण वंकं कुणदि ण वंकं ण जंपए वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं अज्जवधम्मो हवे तस्स॥ ३९६॥

जो मुनि, मन में वक्रता का चिन्तवन नहीं करते। आहा! सूक्ष्म बात है। एक बार

बहुत प्रश्न हुआ था, (संवत्) ८२ था, संवत् ८२ में जामनगर गये थे परन्तु वहाँ तो सब क्रियाकाण्ड बहुत चलता था। ताराचन्दभाई थे, वीरजीभाई के पिताजी (थे), तो वे बाहर से व्यवहार सब कराते थे, उसमें यह बात निकली की भाई! जो मन, वचन, काया की वक्रतारहित सरलता हो तो उससे तो पुण्यबंध होता है। यह सरलता अलग है, वह सरलता अलग है। समझ में आया? चार बोल हैं — शुभ नामकर्म बंधन में चार बोल हैं — मन की वक्रतारहित, वचन की वक्रतारहित, काया की वक्रतारहित, विसंवाद-झगड़ा किसी के साथ नहीं, तथापि यह तो सम्यग्दर्शनरहित हो तो भी ऐसा शुभभाव तो होता है। आहाहा! समझ में आया? जिससे शुभनामकर्म बँध पड़े। यह भाषा तो वह की वह यहाँ है। मन में वक्रता नहीं, वचन में... इस वक्रता का अर्थ-आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव करने में... आहाहा! जिसमें इतनी सरलता है कि अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र शान्ति आती है। आहाहा! उसका नाम आर्जवधर्म कहा जाता है। समझ में आया? इस पाठ में तो ऐसा है परन्तु 'न गुवई निज दोषम्' अपना दोष-जो आसक्ति का थोड़ा (दोष) है, वह भी नहीं छिपाता। भाई! मुझमें तो है। समझ में आया? मुझमें जरा अस्थिरता का दोष आता है, मेरी कमजोरी है — ऐसा सरल मुनि अपनी ज्ञानदशा में आनन्द में सुख का स्वाद लेता है, उसको यह सरलता होती है। आहाहा! समझ में आया? है?

वचन से वक्र नहीं बोलता, अपने दोषों को नहीं छिपाता, (उस) मुनि के उत्तम आर्जव होता है। लो, आहाहा! अपने दोष हो, वह गुरु के पास सरलरूप से प्रसिद्ध करे, यद्यपि यह है तो विकल्प... समझ में आया? नीचे है - जैसे बालक की तरह गुरुओं के पास कहे — ऐसा-ऐसा विकल्प वह तो विकल्प है परन्तु अन्दर में इतनी सरलता है। आहाहा! कि कहने में जरा भी छुपाना... तुम इतनी पदवी धारक और ऐसा राग आया... ऐसा सरलता करके बोले, आया मुझे तो। आहाहा! मैं सन्त हूँ, मुनि हूँ, शान्ति का दाता हूँ, तथापि मेरी परिणति में जरा ऐसा राग आया — ऐसा सरलरूप से वीतरागभाव से प्रसिद्ध करे, समझ में आया? आहाहा! इसको यहाँ उत्तम आर्जवधर्म — तीसरा कहा जाता है। इस आर्जवधर्म में शुभभाव नहीं, अन्दर शुद्ध के उपयोग में रमणता वह यह दश प्रकार का धर्म है। आहाहा! यह तीन बोल आये।

अपने समयसार (१७-१८ गाथा में) भावार्थ आया न? भावार्थ — भावार्थ :- (श्रोताओं को सम्बोधन करके कहा) यह सब आ गया है, तुम्हें पता नहीं रहता। (क्या कहा)? पता नहीं रहता।

आत्मा को नहीं साध सकता, साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है। वहाँ सब आ गया है। **अन्यथा अनुपपत्ति है।** आ गया है। हर बार ऐसा ही होता है, हाँ! याद नहीं रहता। यह बात कर गये थे, अन्दर।

भावार्थ : साध्य आत्मा की सिद्धि दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही है,.... पर्याय से बात की है। आहाहा! इस पर्याय-दर्शन, ज्ञान, चारित्र से सिद्धि है — ऐसी पर्याय से - व्यवहार से बात की है। आहाहा! अरे! विकल्प का व्यवहार तो कहीं (दूर) रह गया परन्तु अन्तर आत्मा की निर्विकल्प दृष्टि-निर्विकल्प सम्यक् आत्मा का ज्ञान और स्वरूप की रमणता... आहाहा! यह तीन भी पर्यायदृष्टि से-व्यवहारनय से कहे गये हैं। आहाहा! तीसरा शब्द लें तो ये अशुद्धनय से कहा गया है, पर्याय है न — भेद? आहाहा! आहाहा! यह ऐसी बात है! भगवान आत्मा अपना शुद्ध अखण्ड एकरूप स्वभाव में से तीन प्रकार पर्यायरूप परिणमित हुए... आहाहा! ऐसा मार्ग।

सम्यक् निर्विकल्प आत्मा का अनुभव और आत्मा का ज्ञान... शास्त्र का ज्ञान, यह बात तो यहाँ है ही नहीं; आहाहा! और आत्मा में रमणतारूप चारित्र, चरना, रमना — इन तीन प्रकार को पर्याय से कहा गया है, व्यवहारनय से कहा गया है। तीसरा शब्द कहें तो अशुद्धनय से कहा गया है। पर्याय का कहना वह अशुद्धनय है, शुद्ध से कहना — अभेद से (कहना) वह शुद्ध निश्चयनय है। आहाहा! यह नय में आया है, कहा था — अशुद्ध, शुद्धनय है न? ४६-४७, प्रवचनसार! मिट्टी में से घड़ा, झारी आदि बर्तन हो, वह पर्याय है, तो वह अशुद्धनय का विषय है और अकेली मिट्टी, वह शुद्धनय का विषय है। (यह दृष्टान्त) है।

सिद्धान्त — आहाहा! भगवान आत्मा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-निश्चयचारित्र और पर्यायरूप परिणमित हो, वह अशुद्धनय का विषय है। आहाहा! और एकरूप द्रव्यस्वभाव, वह शुद्धनय का विषय है — ऐसा मार्ग है। आहा! वह कहते हैं, **अन्य प्रकार से नहीं।**

इस सम्यग्दर्शन, ज्ञान निश्चय से मोक्ष का मार्ग — साध्य की सिद्धि है, मोक्ष अर्थात् साध्य सिद्धि। **अन्य प्रकार से नहीं।....** निषेध कर दिया। व्यवहाररत्नत्रय से, निमित्त से होता है, यह तीन काल में नहीं। आहाहा!

क्योंकि पहले तो आत्मा को जाने कि यह जो जाननेवाला अनुभव में आता है.... यह जाननेवाला जो है, वह अनुभव में आता है। राग है, वह जानने में आता है — ऐसा नहीं है। जाननेवाला राग को, स्व को, पर को भी जाननेवाला है। **यह जो जाननेवाला अनुभव में आता है सो मैं हूँ।....** ऐसी सूक्ष्म बात है। भभूतमलजी प्रश्न करते थे न रात में! सम्यग्दर्शन कैसे हो? आहाहा! बापू! यह बात... आहाहा! यह जाननेवाला, यह अनुभव में आता है। राग — दया, दान, भक्ति का राग नहीं। आहाहा! चाहे तो देव-गुरु और शास्त्र की भक्ति (हो), वह भी एक शुभराग है। समझ में आया? वह अनुभव में नहीं आता; अनुभव में तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आता है कि यह ज्ञान। जाननेवाला आत्मा अनुभव में आता है। आहाहा! रीति बहुत (अद्भुत है), अभ्यास नहीं और वर्तमान में तो इस उपदेश में भी फेरफार हो गया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं — दूसरे प्रकार से कहें तो जाननेवाला जो सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, आहाहा! जाननेवाला सर्वज्ञस्वभावी वह मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा! **सो मैं हूँ।....** उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। यहाँ ज्ञान प्रधान से कथन है न? प्रतीति बाद में लेते हैं। यह जाननेवाला जो है, वह जाननेवाला सर्वज्ञस्वभावी है। जाननेवाला है, वह जानन स्वभावी है। जाननेवाला है, वह सर्वज्ञस्वभावी है। जाननेवाला है, (वह) पूर्ण ज्ञानस्वभावी है — यह बात है। वह अनुभव में आता है, वह मैं हूँ — ऐसा ज्ञान होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा!

इसके बाद उसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है;.... जानने में आता है वह मैं हूँ — ऐसा जो ज्ञान हुआ, सम्यक्, हाँ! शास्त्र को जाननेवाला, राग को जाननेवाला, वह नहीं; मैं तो जाननेवाला, बस! आहाहा! ऐसी ज्ञानदशा हुई, उसमें प्रतीति कि यह आत्मा, यह पूर्ण ज्ञानस्वभावी प्रभु, पूर्ण आनन्द अतीन्द्रिय सुखस्वरूप — ऐसा ज्ञान में जानकर, ज्ञान में जानते प्रतीति हुई, आहाहा!

क्योंकि जाने बिना किसका श्रद्धान करेगा ?.... आहाहा! जाननस्वभाव मैं जाननभाव मैं जाननेवाला मैं हूँ — ऐसा अन्तर्मुख लक्ष्य से जो ज्ञान हुआ, आहाहा! उस ज्ञान में प्रतीति आयी कि यह आत्मा जानने में आया यह आत्मा, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

तत्पश्चात् समस्त अन्यभावों से भेद करके अपने में स्थिर हो।.... आहाहा! जाननेवाला वह मैं हूँ — ऐसा ज्ञान, भान, अनुभव आया, उसमें प्रतीति आयी कि यह आत्मा और उसमें राग आदि से, भेद से भिन्न होकर... आहाहा! यह ज्ञानस्वभावी आत्मा आता है न? हुकमचन्दजी का, नहीं? 'मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ' 'मैं रंग राग से भिन्न, भेदभाव से भिन्न निराला हूँ' एक पंक्ति है उसमें। रंग, राग से भिन्न... रंग अर्थात् अजीव; जितना अजीव है, उससे भिन्न। राग, जितना विकार है, दया, दान, विकल्प आदि उससे भिन्न। रंग, राग से भिन्न, भेदभाव से भिन्न निराला हूँ और उसमें जो पर्याय का भेद है, आहाहा! रंग, राग से भिन्न, भेद से भिन्न निराला हूँ, यह हुकमचन्दजी ने बनाया है न? पूनमचन्दजी बोलते थे। आहाहा!

अजीव के समस्त प्रकारों से मैं भिन्न; विकृत अवस्थाओं के अनेक प्रकार — शुभ अशुभ आदि इनसे भिन्न और पर्याय के अनेक प्रकार — अनन्त गुण के भेद पड़ते हैं, अवस्था, आहाहा! रंग-राग से भिन्न भेद से भिन्न निराला हूँ। आहाहा! ऐसी अन्तर में ज्ञानदशा होकर प्रतीति होना और अन्य भाव से भेद करके, देखो! आहाहा! अपने में स्थिर हो। स्वरूप अखण्डानन्द प्रभु में स्थिर हो। आहाहा! **इस प्रकार सिद्धि होती है....** है न? **किन्तु यदि जाने ही नहीं,....** आहाहा! जिसने ज्ञान की पर्याय में आत्मा कैसा है — ऐसा जाना ही नहीं, वह प्रतीति किसकी करे? ज्ञान में चीज जाने बिना प्रतीति किसकी करे? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

यदि.... आहाहा! **जाने ही नहीं, तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता....** आहाहा! है? **और ऐसी स्थिति में स्थिरता कहाँ करेगा?** जब वस्तु अखण्ड-अभेद ज्ञान में आयी नहीं तो प्रतीति किसकी, और प्रतीति के बिना स्थिरता किसमें करेगा? आहाहा! स्थिरता कहाँ करेगा? जो चीज ही अखण्ड ज्ञायक, अखण्डानन्द प्रभु, ज्ञान में और प्रतीति में नहीं

आयी तो स्थिरता कहाँ से करेगा ? आहाहा ! ऐसा मार्ग है।

इसलिए यह निश्चय है कि अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं होती। आहाहा ! लो इसका — ऊपर का सार आ गया। अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं है।

कलश - २०

अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

(मालिनी)

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

ननु ज्ञानतादात्म्यादात्मा ज्ञानं नित्यमुपास्त एव, कुतस्तदुपास्यत्वेनानुशास्यत इति चेत्, तन्न, यतो न खल्वात्मा ज्ञानतादात्म्येऽपि क्षणमपि ज्ञानमुपास्ते, स्वयम्बुद्ध -बोधितबुद्धत्वकारणपूर्वकत्वेन ज्ञानस्योत्पत्तेः। तर्हि तत्कारणात्पूर्वमज्ञान एवात्मा नित्यमेवाप्रतिबुद्धत्वात् ? एवमेतत्।

श्लोकार्थ : आचार्य कहते हैं कि [अनन्तचैतन्यचिह्नं] अनन्त (अविनश्वर) चैतन्य जिसका चिह्न है ऐसी [इदम् आत्मज्योतिः] इस आत्मज्योति का [सततम् अनुभवामः] हम निरन्तर अनुभव करते हैं [यस्मात्] क्योंकि [अन्यथा साध्यसिद्धिः न खलु न खलु] उसके अनुभव के बिना अन्य प्रकार से साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती। वह आत्म ज्योति ऐसी है कि [कथम् अपि समुपात्तत्रित्वम् अपि एकतायाः अपतितम्] जिसने किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार किया है तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई और [अच्छम् उद्गच्छत्] जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है।

भावार्थ : आचार्य कहते हैं कि जिसे किसी प्रकार पर्यायदृष्टि से त्रित्व प्राप्त

है तथापि शुद्धद्रव्य द्रष्टि से जो एकत्व से रहित नहीं हुई तथा जो अनन्त चैतन्यस्वरूप निर्मल उदय को प्राप्त हो रही है ऐसी आत्मज्योति का हम निरन्तर अनुभव करते हैं। यह कहने का आशय यह भी जानना चाहिए कि जो सम्यक्दृष्टि पुरुष हैं वे जैसा हम अनुभव करते हैं वैसा अनुभव करें।

टीका : अब, कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है, अलग नहीं है, इसलिए वह ज्ञान का नित्य सेवन करता है; तब फिर उसे ज्ञान की उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है ? उसका समाधान यह है — ऐसा नहीं है। यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप से है तथापि वह एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता; क्योंकि स्वयंबुद्धत्व (स्वयं स्वतः जानना) अथवा बोधितबुद्धत्व (दूसरे के बताने से जानना) — इन कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। (या तो काललब्धि आये तब स्वयं ही जान ले अथवा कोई उपदेश देनेवाला मिले तब जाने — जैसे सोया हुआ पुरुष या तो स्वयं ही जाग जाये अथवा कोई जगाये तब जागे।)

यहाँ पुनः प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो जानने के कारण से पूर्व क्या आत्मा अज्ञानी ही है क्योंकि उसे सदा अप्रतिबुद्धत्व है ? उसका उत्तर - ऐसा ही है, वह अज्ञानी ही है।

कलश-२० पर प्रवचन

इस अर्थ का कलश काव्य कहते हैं लो — २०-२०

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

आहाहा ! सन्त कहते हैं, आहाहा ! मैं तो भगवान आत्मा का निरन्तर अनुभव करता हूँ। आहाहा ! अनन्त चैतन्य चिह्न ! आहाहा !

श्लोकार्थ : आचार्य कहते हैं.... आहाहा ! **अनन्त (अविनश्वर) चैतन्य जिसका**

चिह्न है.... अन्तिम शब्द पहले लिया है। उस तीसरे पद में अन्त में है न? **चैतन्य जिसका चिह्न है अविनश्वर....** त्रिकाली नित्यानन्द, जिसकी चिह्न अविनश्वर है, जिसका लक्षण कभी विनश्वर नहीं होता, कभी पर्याय में नहीं आता; राग में तो कहाँ से आये? आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा, आहाहा! सर्वज्ञस्वभावी अविनश्वर स्वभाव... आहाहा! यह चैतन्य जिसका अविनश्वर... अनन्त का अर्थ अविनश्वर किया है। अनन्त काल रहना, इसकी अपेक्षा अनन्त रहना, अविनश्वर रहना... आहाहा!

श्रीमद् में ऐसा आता है — छह बोल आते हैं न? 'पाँचों उत्तर से हुई। आत्मा विषे प्रतीति होगी मोक्ष उपाय की सहज प्रतीति इस रीत'। जिसे आत्मा है, नित्य है... अविनश्वर आया न? आहाहा! है... नित्य है, परिणमता है कर्तारूप से; और उस परिणति का भोक्ता वह है, मोक्ष है, वस्तुस्वभाव है, वह पूर्णरूप से शुद्धरूप से परिणमे — ऐसा मोक्ष है, मोक्ष है — ऐसे छह (बोल) हैं। नित्य, परिणमन कर्ता-भोक्ता का और मोक्ष, अपूर्ण पर्याय का कर्ता-भोक्ता शुद्धता का, अपूर्ण शुद्धता, आहाहा! और पूर्ण शुद्धता का मोक्ष है — ऐसी अन्तर में जिसको प्रतीति हुई... आहाहा! 'होगी मोक्ष उपाय की सहज प्रतीति इस रीत।' आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं — **अनन्त (अविनश्वर) चैतन्य जिसका चिह्न है....** है तो सही, परन्तु अविनश्वर है, चैतन्य, आहाहा! भाई! यह अध्यात्म के शब्द हैं। आहाहा! ऐसी वाणी अन्यत्र नहीं मिले, ऐसा वाच्य (अन्यत्र सम्भव नहीं है) आहाहा! यह है, यह अविनश्वर है, यह अविनश्वर चैतन्य जिसका चिह्न है, लक्षण है। आहाहा! थोड़ा भी परन्तु प्रभु! सत्य होना चाहिए — ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसी... ऐसी **इदम् आत्मज्योतिः** आहाहा! यह प्रत्यक्ष आत्मज्योति, ओहोहो! **सततम् अनुभवामः हम निरन्तर अनुभव करते हैं....** आहाहा! इस नित्य अविनश्वर चैतन्यस्वरूप भगवान को निरन्तर आस्वादते हैं। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? भाव सूक्ष्म है, बात तो यथार्थ है। आहाहा! **सततम्** — निरन्तर वेदन में हमारे, आहाहा! वह '**इदम्**' — प्रत्यक्ष ज्ञाता हमें वेदन में है। आहाहा!

'यह' नित्य अविनाशी भगवान 'इस' इसका निरन्तर अपनी पर्याय में आस्वादन

में आता है, अनुभव में आता है। आहाहा! क्योंकि **यस्मात् अन्यथा साध्यसिद्धिः न खलु न खलु — उसके अनुभव के बिना....** उसके अर्थात् भगवान अविनश्वर चैतन्यस्वभावी भगवान के अनुभव के बिना, आहाहा! **अन्य प्रकार से साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती।** आहाहा! कोई भगवान की बहुत भक्ति करे, कोई शास्त्र की भक्ति बहुत करे, दान बहुत करोड़ों-अरबों का करे... आहाहा! करोड़ों शास्त्रों की रचना करे, करोड़ों मन्दिर बनावे, आहाहा! उस अन्य प्रकार से मुक्ति नहीं होती। **न खलु न खलु** दो बार कहा। आहाहा! इस साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती... आहाहा! नहीं होती — ऐसा लेना। आहाहा! ऐसा काम है। इसका पहले ज्ञान में निर्धार तो करे, मार्ग तो यह है। अन्यथा साध्य-सिद्धि **न खलु न खलु,** आहाहा! अरे! एकान्त नहीं हो जाता है? व्यवहार से भी — भगवान की भक्ति से, शास्त्र की महिमा से आत्मा में कोई लाभ होगा या नहीं? **न खलु न खलु....** नहीं... नहीं...। खलु अर्थात् निश्चय से नहीं, वास्तव में नहीं, वास्तव में नहीं। आहाहा!

वह आत्मज्योति ऐसी है कि **कथम् अपि समुपात्तत्रित्वम् अपि एकतायाः अपतितम्...** आहाहा! **जिसने किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार किया है....** यह आत्मवस्तु जो कि एकरूप त्रिकाल है, उसने तीन प्रकार की पर्याय ग्रहण की है। आहाहा! यह मोक्षमार्ग निश्चय, हाँ! आहाहा! **जिसने किसी प्रकार से....** व्यवहार से **त्रित्व अंगीकार किया है....** व्यवहार से, पर्याय से, भेद से... आहाहा! **किसी प्रकार से....** अशुद्धनय से। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! निश्चय आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, परन्तु तीन प्रकार का परिणमन, वह पर्याय, वह व्यवहारनय का विषय — अशुद्धनय का विषय है। आहाहा! पर्यायनय कहो, व्यवहारनय कहो, या अशुद्धनय कहो। आहाहा! **किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार किया है तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई....** आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो एकरूप है, उससे च्युत नहीं हुई। आहाहा! द्रव्यस्वभाव पर्याय में नहीं आया। आहाहा! गजब बात है।

पर्यायनय से तीन प्रकार (त्रित्व) अंगीकार किया है। मार्ग तो मार्ग है! कहो, भभूतमलजी! यह वहाँ प्रवृत्ति छोड़कर निवृत्ति ले तो समझ में आये ऐसा है। ऐसे का ऐसा

धमाधम... आहाहा! यह मार्ग अभी तो सब कुछ का कुछ कर डाला है, कुछ का कुछ कर डाला है। कोई कहते हैं दया, दान, और व्रत से होगा, कोई कहते हैं भक्ति से होगा, प्रतिमा की भक्ति से (होगा), कोई कहते हैं भगवान की भक्ति से, कोई कहते हैं शास्त्र की भक्ति से (होगा)। सब एक प्रकार का अज्ञान है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा है, नित्य है, एकरूप है। आहाहा! उसके आश्रय से तीन प्रकार — सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन होना, वह भी पर्याय है, व्यवहार है और अशुद्धनय है। आहाहा!

श्रोता : फिर क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना, क्या? है? अन्दर जाना, द्रव्यस्वभाव में एकत्व करना, द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देना, पर्याय के भेद का लक्ष्य छोड़ देना — ऐसा कहना है। भगवान ज्ञायकभाव अविनश्वर आया न? एकरूप रहनेवाला है, वहाँ दृष्टि दे, परन्तु इस दृष्टि की अपेक्षा से कथन करे तो तीन पर्याय हो गयी — दर्शन, ज्ञान और चारित्र। आहाहा! उसका विषय है वह अभेद है परन्तु अभेद का विषय होने से जो पर्याय हुई है?

श्रोता : इसमें कुछ समझ में नहीं आता, कभी भेद कहते हो, कभी अभेद कहते हो — इसमें कुछ समझ में नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट कराते हैं। ऐसा है कि वस्तु जो एकरूप त्रिकाल है, उसमें दृष्टि देना, वह चीज है, तथापि उसके लक्ष्य से द्रव्य जो है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप परिणमता है, वह पर्याय व्यवहार है, त्रिकाली वस्तु निश्चय है। त्रिकाली वस्तु वह अभेद है, तीन प्रकार का परिणमन करना, वह भेद है, व्यवहार है, अशुद्ध है, मेचक है, मलिन है — ऐसा कहने में व्यवहार है। आहाहा! इस सोलहवीं गाथा में आ गया है — मेचक-अमेचक! आहाहा! ऐसी बात है प्रभु, क्या हो? भगवान का विरह पड़ा, ज्ञान की लक्ष्मी घट गयी, लोगों ने अपनी कल्पना से मार्ग चलाया। ऐसा मार्ग है नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया?

मनोहरलालजी वर्णी थे न.... वर्णीजी के शिष्य, उन्हें बेचारों को किसी ने मार डाला ऐसा सुना है। गले में (फन्दा) बाँधकर....। परन्तु उन्होंने प्रश्न किया था, वहाँ एक बार

जयपुर आये थे कि इस उद्दिष्ट का स्पष्टीकरण हो। मैंने कहा, उद्दिष्ट क्या कहे बापू! ऐसा कि गृहस्थ उनके लिए बनाते हैं तो लेनेवाले का उसमें क्या दोष था? उन्होंने कहाँ बनवाया है? अरे...! प्रभु का विरह पड़ा और प्रभु! — भगवान की अनुपस्थिति में उनके (उद्दिष्ट त्यागियों) के लिए बनाया वह कोई दोष नहीं इन्हें? यह नहीं हो सकता। मैंने तो यहाँ तक कहा, प्रभु मैंने तो शान्ति से कहा था — इस समय तो द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी अभी है (— ऐसा मैं तो) नहीं मानता... नहीं, वे क्षुल्लक थे तब तो सुनते थे, बाद में जरा विरोध बहुत हो गया।

उसमें बेचारे गुजर गये किसी ने .... पुस्तक बहुत बनाते थे न? सेट (पुस्तकों के) बहुत बनाते थे और फिर गृहस्थों को बेचते थे, पैसा बहुत इकट्ठा हुआ था, पाँच लाख है ऐसा कोई कहता था। उसमें एक गृहस्थ से मेरठ में ढाई लाख माँगते थे, तो ऐसा सुना है कि लोगों ने प्रार्थना की कि साहिब! अब वहाँ आओ, ईसरी में रहो। जैसे कानजीस्वामी एक स्थान में रहते हैं, और परिचय करते हैं... क्या कहते हैं इसे? प्रभावना नहीं, (श्रोता : प्रचार-प्रसार) प्रचार और प्रसार करते हैं। ऐसा कि उनसे कहा तुम अब वहाँ ईसरी में आओ। तब उन्हें उनसे वह पैसे माँगते होंगे जिनसे उनसे माँगा ढाई लाख माँगते थे। तो कहा ढाई लाख दो, उसने कहा (क्या है यह)? साढ़े चार बजे तक बेचारा कुछ नहीं था, हाँ! बैठे थे, जीभ निकल गयी। हार्टफेल होवे तो जीभ नहीं निकलती। ऐसा सुना है। हार्टफेल हो जाये परन्तु ऐसे जीभ अरर...! ऐसा कुछ भी प्राणी के लिए... आहाहा! पाँच मिनट में देह छूट गयी। वहाँ दूसरे साथ आवें, वहाँ मर गये। मुर्दा, साढ़े चार बजे तब तक कोई नहीं — ऐसा क्या हो गया? यह इन्हें मैंने कहा था भाई! गृहस्थ, क्षुल्लक और साधु के लिए (आहार) बनाते हैं, वे लेते है, यह व्यवहार भी उनका सच्चा नहीं है। आहाहा! उसका द्रव्यलिंग भी सच्चा नहीं, आहाहा! भगवान का विरह पड़ा तो तुम्हें बचाव करना है, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही! यह सदोष आहार लेना, यह चीज तो कहीं रह गयी परन्तु यहाँ तो निर्दोष वस्तु ज्ञायक एकरूप अभेद की परिणति में तीन पर्याय — सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुई, उसको हम कहते हैं **त्रित्वम् अपि एकतायाः**

अपतितम् त्रित्वम् है परन्तु वह एकता को नहीं छोड़ता। द्रव्यस्वभाव ने एकरूप नहीं छोड़ा है। इस परिणमन में तीन प्रकार आये, वह व्यवहार है। आहाहा! वह पर्याय है, शुद्ध है परन्तु पर्याय है। पर्याय है वह व्यवहारनय का विषय है। द्रव्य त्रिकाली निश्चय का विषय है, पर्यायमात्र व्यवहार का विषय है। केवलज्ञान हो तो भी व्यवहार का विषय है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार....** परिणति में पर्याय तीन प्रकार हुई थी। तीन हुई है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! किसी प्रकार से 'त्रि' अर्थात् पर्यायदृष्टि से, व्यवहारनय से तीन प्रकार हुए हैं। आहाहा! **तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई....** ज्ञायकरूप निश्चय एकरूप है, उससे च्युत नहीं, वह चीज पर्याय में आयी नहीं। आहाहा! समझ में आया? तीन प्रकार — सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मुक्ति का सच्चा उपाय, साध्य की सिद्धि / उत्पत्ति इससे होती है। तथापि इस तीन प्रकार की पर्याय को अशुद्ध और व्यवहारनय का विषय पर्याय को कहकर, भगवान त्रिकाली ज्ञायक है, वह एकरूप से कभी च्युत हुआ ही नहीं। द्रव्य है, वह पर्याय में कभी नहीं आया। आहाहा! निश्चय वस्तु है, वह किसी पर्याय में और व्यवहार में नहीं आयी। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

आहाहा! एक श्लोक में तो कितना भरा है! एकरूप त्रिकाली भगवान ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... नित्य... नित्य... नित्य... सदृश... सदृश.. सदृश... वह चीज जो निश्चय है, वह अपने स्वरूप से च्युत नहीं हुई। आहाहा! यह निश्चय वस्तु है, यह पर्यायरूप तीन प्रकार हुई, परन्तु पर्याय में निश्चय वस्तु नहीं आयी। आहाहा! भगवान आनन्द गोला, त्रिकाल आनन्द गोला, वह ध्रुव एकरूप आनन्द पिण्ड प्रभु, इस तीन प्रकार की पर्याय में नहीं आया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है प्रभु! आहाहा! इसे ज्ञान में तो पहले लेना पड़ेगा (कि) मार्ग यह है, दूसरे प्रकार से है नहीं।

तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई। अच्छम् उद्गच्छत्.... आहाहा! **जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है।...** आहाहा! त्रिकाल निर्मलरूप है, आहाहा! **अच्छम् उद्गच्छत्....** निर्मलरूप त्रिकाल है, जो निर्मलता से उदय को अर्थात् प्रगट

अन्दर प्राप्त हुई है, त्रिकाल। आहाहा! समझ में आया? इसमें क्या अर्थ किया है? क्या है यह, बीसवाँ है न? परिणमता है — ऐसा कहा है इसमें। आत्मज्योति प्रकाशरूप परिणमति है — ऐसा लिया है। इस प्रकार एक अर्थ ऐसा लिया है। **अच्छम्** — निर्मल त्रिकाल है, जो निश्चयवस्तु है, वह तो निर्मल त्रिकाल है, बाद में पर्याय में परिणति होती है, जैसा उसका निर्मल ज्ञायकस्वभाव है, **अच्छम्** उस पर्यायरूप परिणमति है, पर्यायदृष्टि से (परिणमति है)। आहाहा!

श्लोक बहुत गम्भीर है। प्रत्येक श्लोक! आहाहा! पूरा जैनधर्म! बस, सत्य बात बापू! आहाहा! उसका एक श्लोक, उसका एक कलश, सारा जैनशासन एक-एक में भर दिया है। आहाहा!

भावार्थ : आचार्य कहते हैं कि जिसे किसी प्रकार.... जिसे अर्थात् आत्मा को, किसी प्रकार से अर्थात् **पर्यायदृष्टि से...** देखो! **त्रित्व प्राप्त है...** आहाहा! जो द्रव्य है वह पर्यायरूप से त्रिपने परिणमता है। आहाहा!

तथापि शुद्धद्रव्य द्रष्टि से जो एकत्व से रहित नहीं हुई.... आहाहा! भगवान आत्मा जो एकरूप त्रिकाल वस्तु है, वह कभी उससे च्युत नहीं हुई। आहाहा! पर्यायदृष्टि से तो त्रित्व प्राप्त है, तथापि शुद्धदृष्टि से एकत्व से रहित नहीं हुई। आहाहा! यह द्रव्य, पर्यायपने परिणमा है — ऐसा कहा गया है, तथापि वह द्रव्य, पर्याय में नहीं आया। आहाहा! ***द्रवति इति गच्छति इति द्रव्यम्*** आता है न? द्रव्य है वह ***द्रवति गच्छति इति द्रव्यम्*** जो द्रव्य है वह द्रवति (अर्थात्) पर्याय में द्रवता है, द्रवता है। पानी का दल है, वह पानी की तरंगरूप उठता है, वैसे भगवान आत्मा एकरूप त्रिकाल है, वह पर्यायरूप द्रवता है। वह द्रवती है, वह पर्याय है, द्रव्य द्रवती है — ऐसा कहना व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा!

अरे ऐसी चीज है! समझ में न आवे सुनने में न आवे, वे क्या करें? विरोध करें... विरोध। किसका विरोध करते हैं यह पता नहीं है। है? इसका विरोध करते हैं। भाई, बापू! उल्टी दृष्टि से दुःख होगा भाई! और दुःख में रहना, तो कौन चाहेगा प्रभु! आहाहा! इस विपरीत दृष्टि से तो महादुःख होगा, यहाँ तो विपरीत दृष्टि नहीं परन्तु पर्यायदृष्टि से भी

आश्रय करने जायेगा तो राग होगा। आहाहा! तीन प्रकार का — सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, भेद का, भी लक्ष्य करेगा तो राग होगा। आहाहा! किसी प्रकार पर्यायदृष्टि से जिसे ऐसा कहा न? आहाहा! जिसे... यह तो भाई! आहाहा! जिसे किसी प्रकार, जिसे अर्थात् आत्मा को त्रिकाली, किसी प्रकार अर्थात् पर्यायदृष्टि से, ऐसा? तीनपना अंगीकार किया। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन निर्विकल्प, निश्चय सम्यग्ज्ञान-आत्मज्ञान, निश्चय चारित्र-स्वरूप की रमणता, यह जिसे अर्थात् आत्मा को पर्यायदृष्टि से तीन प्रकार हुए हैं। आहाहा! **शुद्ध द्रव्यदृष्टि से जो एकत्व से रहित नहीं हुई,** एकरूप ज्ञायकभाव वह कभी पर्याय में नहीं आया। आहाहा! भगवान एकरूप चैतन्यदल सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द, एकरूप निश्चय, वह कभी पर्याय में एकत्व को छोड़कर अनेकरूप वह चीज नहीं हुई। आहाहा! आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? कठिन पड़ता है, इसलिए दूसरा उल्टा रास्ता ले लिया। आहाहा!

तथा जो अनन्त चैतन्यस्वरूप निर्मल उदय को प्राप्त हो रही है.... अनन्त चैतन्य निर्मल उदय को प्राप्त हो रही है, त्रिकालरूप ऐसा है, है? यहाँ तो यह लिया — अनन्त चैतन्य निर्मल उदय को प्राप्त, कायम त्रिकाल निर्मल ज्योति पड़ी है। देखो! ऐसा अर्थ यहाँ किया। आहाहा! मूल तो वहाँ बताना है कि वस्तु तो निर्मल ज्योति एकरूप त्रिकाल है — ऐसी आत्मज्योति को देखो। देखा? पण्डितजी! ऐसी आत्मज्योति ली है। उसमें जरा परिणमन लिया परन्तु अनन्त चैतन्यस्वरूप अविनाशी चैतन्य चिह्न... वहाँ आया न? आया था न? है न अन्दर? अनन्त चैतन्य चिह्न इससे पहला वह। आहाहा! यह तीन लोक के नाथ भगवान की वाणी है। सन्तों की वाणी वह भगवान की वाणी है। आहाहा! एक-एक शब्द में बहुत गूढ़ता है।

भगवान आत्मा अनन्त चैतन्यस्वरूप निर्मल उदय को अर्थात् कायम रहना, प्राप्त हो रही है। आहाहा! **ऐसी आत्मज्योति...** देखो! ऐसी भगवान आत्मज्योति **का हम निरन्तर अनुभव करते हैं।....** यह पर्याय। **आत्मज्योति का हम निरन्तर अनुभव करते हैं,...** पर्याय में अनुभव करते हैं। आहाहा! इस आत्मा का हम अनुभव करते हैं — ऐसा कहते हैं। अनुभव तो पर्याय है न? आहाहा! आत्मज्योति भगवान, चैतन्यज्योति, स्वयंज्योति,

निर्मलज्योति, एकरूप भगवान चैतन्यज्योति का अनुभव... आहाहा! **निरन्तर अनुभव करते हैं।....** क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई मुक्ति / साध्य की सिद्धि है नहीं, मोक्षरूपी साध्य की इसके अतिरिक्त सिद्धि है नहीं। आहाहा!

यह कहने का आशय यह भी जानना चाहिए कि जो सम्यक्दृष्टि पुरुष हैं.... आहाहा! स्वयं मुनि तो कहते हैं कि हम भगवान आत्मज्योति निर्मल जलहल ज्योति अविनश्वर (आत्मज्योति) का अनुभव करते हैं, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! अब **जो सम्यक्दृष्टि पुरुष हैं, वे जैसा हम अनुभव करते हैं, वैसा अनुभव करें।** आहाहा! जिसने अपना पूर्णानन्द ज्ञायकस्वभाव प्रतीति में लिया है — ऐसे समकिती जीवों, तुम निरन्तर अनुभव करो। राग की क्रिया में आता है, तो (उसे) छोड़कर अनुभव करो — ऐसा कहते हैं। आहाहा! अशुभराग से बचने को शुभराग आता है परन्तु उससे बचने को (उसे) छोड़कर... आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी यह अनुभव करो। यह आत्मा का अनुभव मोक्ष का कारण है।

अनुभव चिन्तामणि रत्न अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

यह बात है भाई! सूक्ष्म बात है। यह तो अन्य पैसेवाले पैसा खर्च करें, इसलिए पद दे देते हैं कि जीव धर्मी हो गया। भभूतमलजी! आठ लाख खर्च किये वहाँ इन्होंने बैंगलोर मन्दिर में आठ लाख (खर्च किये)। चार लाख (एक दूसरे) भाई ने (खर्च किये)। परन्तु कहा, भाई! तुम आठ लाख क्या दस लाख डालो... इस दो करोड़ में से आठ लाख दिये तो चालीस लाख तो आमदनी हुई दूसरे तो उसमें शुभभाव होवे, यह तो कहा धर्म-फर्म नहीं, यहाँ तो आठ लाख और दस लाख देवें ही किसके कितने अधिक, इतने अधिक परन्तु करोड़ खर्च कर डाले तो भी वह जड़ है। जड़ की पर्याय जड़ होती है, तुझे शुभभाव है, वह धर्म-फर्म नहीं है। आहाहा!

आत्मा का दर्शन-ज्ञान और चारित्र अनुभव करना, वह धर्म है।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)